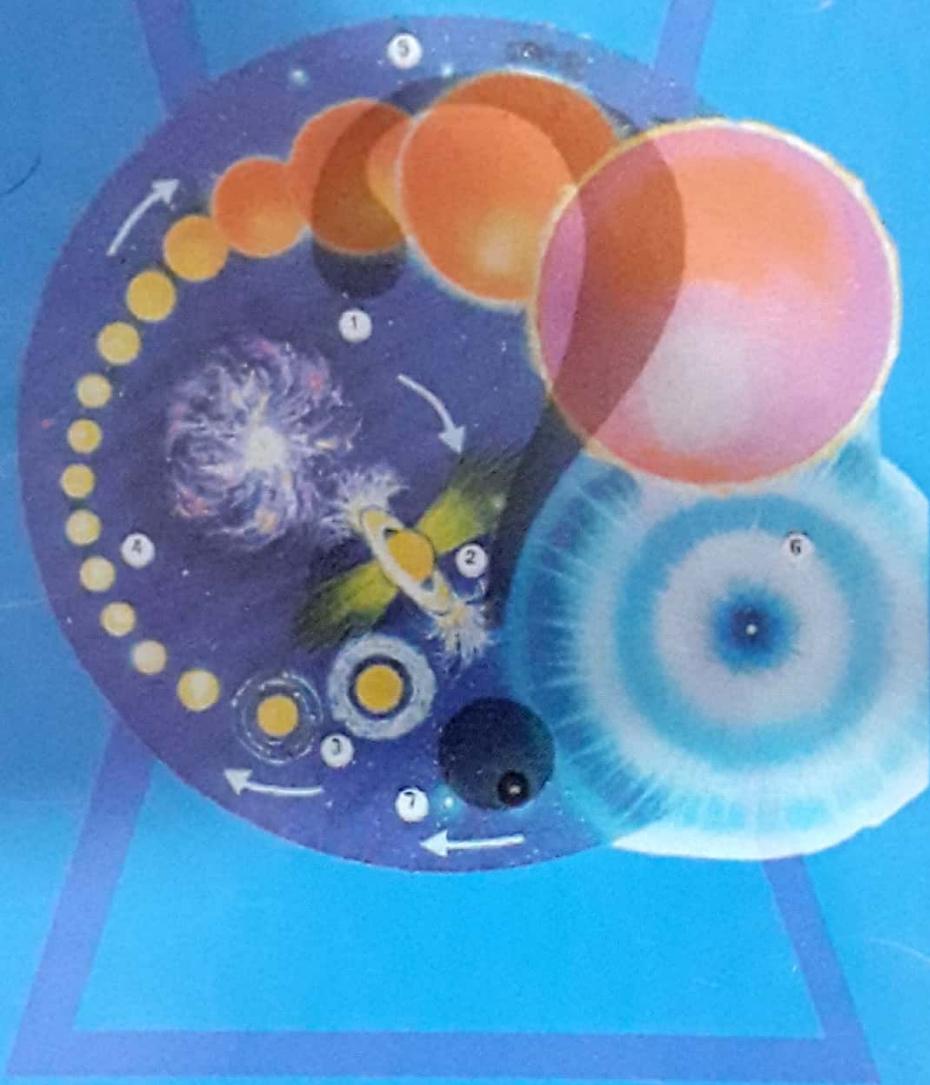


**जैन तथा जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-5)**  
*Jain Facts : Beyond Modern Knowledge*

**ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड : धार्मिक  
एवं वैज्ञानिक विश्लेषण**



लेखक - वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव



नरसिंहपुरों के नोहरे में ऋषिमण्डल महाविधान के अवसर पर आ. श्री  
कनकनंदी जी गुरुदेव संघ



जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से को<sup>र</sup> (ज्ञान धारा-५)  
Jain Facts : Beyond Modern Knowledge

# ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्डः धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

-: लेखक :-  
वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

प्रकाशक  
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडोत)  
धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

मुद्रक :-  
जैन प्रिंटर्स, उदयपुर, फोन : 2425843

जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-5)  
Jain Facts : Beyond Modern Knowledge

ब्रह्मण्ड एवं प्रतिब्रह्मण्ड धार्मिक एवं  
वैज्ञानिक विश्लेषण

ग्रंथांक - 148

लेखक -

वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

संस्करण - प्रथम - 2005

प्रतिवाँ - 2000

मूल्य - 15.00/- रुपये

द्रव्यदाता / ज्ञानदाता

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)

धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

## लोक (ब्रह्माण्ड) की परिभाषा :-

दिसन्ति जत्थ अत्थ जीवादीया स भण्णदे लोअरे,  
तस्य सिहरम्मि सिद्धा अंत-विहीणा विश्वयंते ॥ 12

स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा

जहाँ पर जीव आदि पदार्थ देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। उसके शिखर पर अनन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं। 'लोक' शब्द 'लुक्' धातु से बना है, जिसका अर्थ देखना होता है अतः जितने क्षेत्र में जीव, पुन्नल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। ("धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोकः ।" सर्वार्थ., पृ. 176) लोक के मस्तक पर तनुवातवलय में कर्म और नोकर्म से रहित तथा सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं। जो अन्तरहित-अविनाशी हैं, अथवा जो अन्तरहित अनन्त हैं।

## ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड :-

धर्माधर्मागासा गदिरगदि जीव योग्यत्वाणि च,  
जावत्तावल्लोगो आव्यासमदो परमणतं ॥ 5 त्रिलोकसार

जितने आकाश को धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य

और गति अगति करने वाले जीव एवं पुद्गल द्रव्य तथा शब्द के द्वारा  
ग्रहित कालद्रव्य अभिव्याप्त करते हैं उतने आकाश को लोक कहते  
हैं, इसके आगे अलोकाकाश है। अलोकाकाश अनन्त है।

धर्माधर्मा कालरे पुज्गतजीवा द संति जावदिये ।

आयासे से लोगे तत्ते परदे अलोगुत्ते । 20 द्र. सं.

Lokakasa is that in which Dharma, Adharma, Kala, Pudgala and Jiva exist, that which is beyond (this Lokakasa) is called Alokakasa.

“Loka is that place in which happiness and misery are seen as results of virtue or vice, or Loka might be said to be that place in which things are got, or Loka is that place which is perceived by the omniscient.” This is how Akalanka Deva derives the word Loka. Akasa with reference to Loka or Akasa similar in extent to Loka is Lokakasa, and Akasa beyond Loka is Alokakasa.

In the accompanying Plate, we have a representation of Lokakasa and Alokakasa. Loka or the universe, according to the Jaina idea, consists of three divisions - Urdha Loka or the upper world Madhya Loka or the middle world and Adho Loka

or the lower world. The first is the abode of celestial beings, the second of men and of other creatures, and the third of the inmates of hell. Surrounding' these Lokas, which are situated one above the other, are three layers of air, the inner being humid, the dense and the outer rarified. Within the envelope of these layers, there is Lokakasha invisible substance which allows space to other substances and is equal in extent to the Loka. In this Lokakasa, Jiva, Pudgala, Dharma, Adharma and Kala exist.

Beyond this Lokakasa, there is Alokakasa which is eternal, infinite, formless, activityless and perceptible only by the omniscient. In Alokakasa, there is only the substance Akasa and not Dharma, Adharma, Kala, Pudgala or Jiva.

जहाँ पुण्य-पाप का फल देखा जाता है उसे लोक कहते हैं, अथवा जहाँ पुण्य-पाप कर्मों का फल सुख-दुःख रूप लक्षण में देखा जाता है उसे लोक कहते हैं, अथवा जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं, अथवा जहाँ अर्थ देखा जाता है, उपलब्ध होता है उसे लोक कहते हैं। अप्रतिहत केवलदर्शनि के माध्यम से सर्वशः द्वारा जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। इसी प्रकार अकलङ्कदेव ने

लोक की परिभाषा कही है - लोक के आकाश को लोकाकाश कहते हैं। जैसे पृथ्वी पृष्ठ पर जहाँ जल रहता है, उसे जलाशय कहते हैं। उसी प्रकार आकाश के जिस प्रदेश में लोक रहता है उसे लोकाकाश कहते हैं। इस प्रकार लोकाकाश और अलोकाकाश का भेद है। जैन दृष्टिकोण से लोक अर्थात् विश्व के तीन भेद है - अधोलोक, मध्यलोक, उर्ध्वलोक। प्रथम लोक में नारकी रहते हैं, द्वितीय लोक में मनुष्य एवं तिर्यक्ष रहते हैं एवं तृतीय लोक में देव लोग रहते हैं। विश्व के घेरे हुए एवं परस्पर एक दूसरे को वेष्टित करते हुए तीन वातवलय हैं। घनोदधिवातवलय को वेष्टित करते हुए घनवातवलय तथा घनवातवलय को तनुवातवलय वेष्टित किये हैं। इस प्रकार तीन वातवलय से वेष्टित जो अदृश्य (अमूर्तिक) आकाश है उसको लोकाकाश कहते हैं, जो कि अन्य द्रव्यों को अवगाहन देता है। इस लोकाकाश में जीव, पुङ्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य रहते हैं। इस लोकाकाश के बाहर अलोकाकाश है जो कि शाश्वत, अनन्त है, अमूर्तिक है, अन्य द्रव्य से रहित है, क्रियाहीन है एवं सर्वज्ञ के द्वारा ज्ञात है। अलोकाकाश में केवल आकाश ही है, उसमें धर्म, अधर्म, काल, जीव एवं पुङ्गल नहीं है। इस अलोकाकाश की सीमा, प्रत्येक दिशा में अनन्तानन्त है। इस अनन्तानन्त आकाश के

बहु मध्य भाग में जो सीमित असंख्यात प्रदेशी लोक हैं उसका आकार भी निश्चित, सुव्यवस्थित और अपरिवर्तनशील है।

## परिणमनशील ब्रह्माण्ड :-

परिणाम - सहावादो पडिसमयं परिणमांति दब्वाणि ।  
तेस्मि परिणामादो लोकस्स वि मुणहे परिणामं ॥

117 कार्तिकेयानुप्रेक्षा

परिणमन करना वस्तु का स्वभाव है अतः द्रव्य प्रति-समय परिणमन करते हैं। उनके परिणमन से लोक का भी परिणमन जानो।

जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, या पर्यायों को प्राप्त होते हैं, उन्हें द्रव्य कहते हैं। जीव, पुङ्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छहों द्रव्यों में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूपसे प्रति-समय परिणमन होता रहता है। प्रतिसमय छहों द्रव्यों की पूर्व-पूर्व पर्याय नष्ट होती है, उत्तर-उत्तर पर्याय उत्पन्न होती है, और द्रव्यता ध्रुव रहती है। इस तरह भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में अनन्त पर्याय रूप से परिणमन करना द्रव्य का स्वभाव है। जो इस तरह परिणमनशील नहीं है, वह कभी सत् हो ही नहीं सकता। अतः नित्य होने पर भी जीव, पुङ्गलादि द्रव्य अनेक स्वभाव पर्याय तथा विभाव

पर्याय रूप से प्रति समय परिणमन करते रहते हैं। परिणमन करना उनका स्वभाव है। स्वभाव के बिना कोई वस्तु स्थिर रह ही नहीं सकती। उन्हीं परिणामी द्रव्यों के समुदाय को लोक कहते हैं। अतः जब द्रव्य परिणमनशील है तो उनके समुदाय रूप लोक का भी परिणामी होना सिद्ध ही है, अतः द्रव्य की तरह लोक भी परिणामी नित्य जानना चाहिए।

एवं विद्यम्भि जे अत्थपञ्चवा विद्यणपञ्चवा चावि ।  
तीदाण्णगदभूद तावदियं तं हवदि दव्वं । 55 गो.जी.  
एक द्रव्य में त्रिकाल सम्बन्धी जितनी अर्थ पर्याय और व्यञ्जन पर्याय है, उतना ही द्रव्य है। अर्थात् त्रिकालवर्ती पर्यायों को छोड़कर द्रव्य कोई चीज नहीं है।

शंका :- जो नित्य है, वह अनित्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर :- वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है, क्योंकि वह सत् है। यदि एक वस्तु में उन अनेक धर्मों को अपेक्षाभेद के बिना यों ही मान लिया जाये तो उनमें विरोध हो सकता है। किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से विरोधी दिखायी देने वाले धर्म भी एक स्थान पर बिना किसी विरोध के रह सकते हैं। जैसे, पिता, पुत्र, भ्राता, जमाता आदि

लौकिक सम्बन्ध परस्पर में विरोधी प्रतीत होते हैं। किंतु भिन्न-भिन्न सम्बन्धियों की अपेक्षा से यह सभी सम्बन्ध एक ही मनुष्य में पाये जाते हैं। एक ही मनुष्य अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है, अपनी पुत्री की अपेक्षा से पिता है, अपने भाई की अपेक्षा से भ्राता है और अपने श्वशुर की अपेक्षा से जमाता है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य द्रव्य रूप से नित्य है, क्योंकि द्रव्य का नाश कभी भी नहीं होता। किंतु प्रति-समय उसमें परिणमन होता रहता है, जो पर्याय एक समय में होती है, वही पर्याय दूसरे समय में नहीं होती, जो पर्याय दूसरे समय में होती है वह तीसरे समय में नहीं होती है, अतः पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। पर्याय दो प्रकार की होती हैं, एक व्यञ्जन पर्याय और दूसरी अर्थ पर्याय। इन दोनों प्रकारों के भी दो-दो भेद होते हैं - स्वभाव और विभाव। जीव की नर, नारक आदि पर्याय विभाव व्यञ्जन पर्याय है, और पुङ्गल की शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खण्ड, अन्धकार, छाया, धूप, चांदनी वगैरह पर्याय विभाव व्यञ्जन पर्याय है। प्रदेशात्व गुण के विकार को व्यञ्जन पर्याय और अन्य शेष गुणों के विकार को अर्थ पर्याय कहते हैं। तथा जो पर्याय परसम्बन्ध के निमित्त से होती है उसे विभाव, तथा जो परसम्बन्ध के निमित्त बिना स्वभाव से ही होती है उसे स्वभाव पर्याय कहते हैं। हम

चर्म चक्षुओं से जो कुछ देखते हैं, वह सब विभाव व्यज्जन पर्याय है। सारांश यह है कि द्रव्यों के समूह का ही नाम लोक है। द्रव्य नित्य है, अतः लोक भी नित्य है। द्रव्य परिणामी है, अतः लोक भी परिणामी है।

## स्थावर और त्रस लोक :-

एङ्गदिएहिं भरिदो पञ्च-पवारेहिं सब्बदोलोउरो ,  
तस-णाडीए वि तसरा ण बहिरा होंति सब्बत्थ ॥ 122

यह लोक पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों से सर्वत्र भरा हुआ है किंतु त्रस जीव त्रसनाली में ही होते हैं, उसके बाहर सर्वत्र नहीं होते। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीव 343 घन राजू प्रमाण सभी लोक में भरे हुए हैं। किंतु त्रस अर्थात् दो इंद्रिय, तेझिंदिय, चौझिंदिय, और पञ्चेद्रिय जीव त्रस नाली में ही पायें जाते हैं। उदूखल (कोशकारों ने उदूखल का अर्थ ओखली और जूगुल वृक्ष किया है। यहाँ वृक्ष लेना ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि त्रिलोक प्रशस्ति तथा त्रिलोकसार में त्रसनाली की उपमा वृक्ष के सार अर्थात् छाल वगैरह के मध्य में रहने वाली लकड़ी से दी है) के बीच में छेद करके उसमें रखी हुई बाँस की नली के समान लोक के मध्य में चौकोर

त्रसनाली है। उसी में त्रसजीव रहते हैं। (उपपाद और मारणान्तिक समुद्धातके सिवाय त्रसजीव उससे बाहर नहीं रहते हैं।)

उववादमारणांतियपरिणवत्समुज्जिञ्जण सेस्तसा ।  
तस्पालिबाहिरम्हि व णत्थि त्ति जिणेहिं पिद्धिङ्ग ॥

192 गो. जीव.

त्रसनाली से बाहर का कोई एकेन्द्रिय जीव त्रस नाम कर्म का बंध करके मृत्यु के पश्चात् त्रसनाली में जन्म लेने के लिए गमन करता है, तब उसके त्रसनाम कर्म का उदय होने के कारण उपपाद की अपेक्षा से त्रसजीव त्रसनाली के बाहर पाया जाता है। तथा जब कोई त्रसजीव त्रसनाली के बाहर एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म लेने से पहले मारणान्तिक समुद्धात करता है, तब त्रसपर्याय में होते हुए भी उसके आत्मा के प्रदेश त्रसनाली के बाहर पाये जाते हैं। ‘ण बाहिरा होंति सव्वत्थ’ के स्थान पर ‘ण बादरा होंति सव्वत्थ’ ऐसा भी पाठ है इसका अर्थ होता है कि बादर जीव अर्थात् स्थूल पृथ्वीकायिक वगैरह एकेन्द्रिय जीव तथा त्रसजीव सर्व लोक में नहीं रहते हैं। क्योंकि जीवकाण्ड में लिखा है - ‘स्थूलजीव आधार से ही रहते हैं’ (आधारो थूलाओ)

शंका :- क्या त्रसनाली में सर्वत्र त्रसजीव रहते हैं ?

उत्तर :- त्रसनाली में त्रसजीव रहते हैं, यह सामान्य कथन है। त्रिलोकप्रज्ञसि में इसका विशेष कथन किया है।

लोद्यबहुमण्डदेसे तरुम्मिसारं व रज्जूपदरजुदा।  
तेस्स रज्जूस्सहा किंचूणा होदि तसणाली ॥ 6

द्वि. अधि. त्रिलोकप्रज्ञसि

“वृक्ष में उसके सारकी तरह, लोक के ठीक मध्य में एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी और कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रसनाली है।”

शंका :- त्रसनाली को कुछ कम तेरह राजू ऊँची कैसे कहा है ?

उत्तर :- सातवी महातमः प्रभा नाम की पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है। (देखो त्रिलोकसार गाथा 174 की टीका) उसके ठीक मध्य में नारकियों के श्रेणीबद्ध बिल बने हुए हैं। उन बिलोंकी मोटाई  $\frac{4}{3}$  योजन है। इस मोटाई को समच्छेद करके पृथिवी की मोटाई में से घटाने से  $\frac{2400}{3} - \frac{4}{3} = \frac{23996}{3}$  योजन शेष बचता है। इसका आधा  $\frac{11998}{3}$  योजन होता है। भाग देने पर  $3999 \frac{1}{3}$  योजन आते हैं। इतने योजन के  $31994666 \frac{2}{3}$  धनुष होते हैं। यह तो नीचे की गणना हुई। अब ऊपर की लीजिए। सर्वार्थसिद्धि विमान से ऊपर 12 योजन पर ईषत्प्राभार नाम की आठवी पृथिवी है। जो आठ

योजन मोटी है। इसके नीचे नित्य निगोदीया के एक राजू और इन सब को घटाने पर त्रसनाली कुछ कम तेरह राजू होती है।

तिहुवणमुङ्कारुढर ईसिपभार धरुमी रुंदर ।  
दिग्धा इगिसगरज्जु अडजोयणपरिमदवाहल्लर ॥ 556

तीनों लोकों के मस्तक पर आरुढ ईष्टप्राभार नाम की आठवीं पृथ्वी है। उसकी चौडाई एक राजू, लम्बाई सात राजू और मोटाई आठ योजन है। 12 योजन के 96000 धनुष होते हैं। और आठवीं पृथ्वी के आठ योजन के 64000 धनुष होते हैं।

कोसाणं दुग्मेक्षं च देसूणेक्षं च लोयसिहरम्मि ।  
ऊणधणूणपमाणं पणुवीसज्जरहियचारियसं ॥ 126 त्रि. सा.

लोक के शिखर पर तीनों वातवलयों का बाहुल्य दो कोस, एक कोस, और कुछ कम एक कोस है। कुछ कम का प्रमाण 425 धनुष है। अतः तीनों वातवलयों का बाहुल्य  $4000+2000+1575 = 7575$  धनुष होता है। क्योंकि एक कोस के 2000 धनुष होते हैं। उसके ऊपर तीनों वातवलयों की मोटाई 7575 धनुष है। इन सब धनुषों का जोड 3216224  $\frac{1}{3}$  धनुष होता है।

## निगोदिया जीव :-

त्रसनाली में नरक के नीचे एक राजू प्रमाण में नित्य निगोदिया जीव होते हैं। नित्य निगोदिया उसे कहते हैं जो भाव की प्रचुर मलिनता के कारण अभी तक द्वीन्द्रियादि त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं किया है। भविष्य में वे भाव की निर्मलता से द्वीन्द्रियादि त्रस पर्यायों को प्राप्त करके क्रम विकास करते हुए मानव से महामानव एवं भगवान् भी हो सकते हैं। निगोदिया जीव अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। एक ही निगोदिया शरीर में अनंत निगोदिया जीव निवास करते हैं। वे एक श्वास में 18 बार जन्म-मरण करते हैं। उनका जन्म-मरण, श्वास, भोजन-शरीरादि समान होने से उन्हें साधारण जीव कहते हैं। वैसे निगोदिया जीव त्रसनाली में अन्यत्र भी रहते हैं।

## ब्रह्माण्ड : प्रतिब्रह्माण्ड के आकार एवं विस्तार : धार्मिक तथा वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

अमेरिका की अंतरिक्ष अनुसंधान संस्था “नासा” के एक अङ्ग विल्किंसन माइक्रोवेव ऐनीसोट्रोपी प्रोन (W.M.A.P.) की अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार ब्रह्माण्ड अनाकार नहीं, उसका आकार भी है। साथ ही यह भी कि ब्रह्माण्ड असीमित नहीं, उसकी सीमाएँ हैं। मेक आर्थर फैलोशिप प्राप्त, स्थापित गणितज्ञ जैफ्री वीक्स के अनुसार इस बारे में अध्ययन जारी है तथा कुछ और जानकारियाँ मिलते ही हम ब्रह्माण्ड की सरहदों का अनुमान लगा सकने की स्थिति में होंगे।

यूनिवर्स के अन्तहीन न होने अर्थात् उसकी सीमाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए एक अंतरिक्ष यान में माइक्रोवेव एंटीना लगाया गया था, जिसने ध्वनि तंरगों की मदद से ब्रह्माण्ड के अनंत होने का गल्प लगभग समाप्त करने की दिशा में कदम बढ़ा दिया है।

सुदूर आकाश में फैले तारों और जाने-अनजाने ग्रहों

की स्थिति, उनकी गति, मार्ग व अन्य कई ऐसे विषय हैं जो वैज्ञानिकों व शोधकर्ताओं को आकर्षित करते रहते हैं। इनमें कास्मिक बैकग्राउंड रेडिएशन भी है जो जिज्ञासुओं से बहुत कुछ कहता है। इस रेडिएशन के संबन्ध में “नासा” अक्टूबर 2001 से जानकारियाँ इकट्ठा कर रहा था जिसे उसने फरवरी 2003 में पहली बार जारी किया। इन्हीं अध्ययनों में यह भी बताया गया कि ब्रह्माण्ड का आकार फुटबॉल की तरह है, यानी पृथ्वी की तरह वह भी गोल है। साथ ही यह संभावना भी व्यक्त की गई है कि ब्रह्माण्ड का आकार बारह कोणीय भी हो सकता है। वैसे ब्रह्माण्ड को लेकर अक्सर जो सवाल उठायें जाते हैं, उनमें इसके अंतहीन होने का मामला भी है। साथ ही इसके चमकदार या धुंधले होने पर भी खोज की जाती रही है। बीते सालों में हुए खगोलीय अध्ययनों से प्राप्त जानकारियाँ बताती हैं कि इन सवालों के संभावित दुरुस्त जवाब मिल सकते हैं। यह अगर संभव हो गया तो निश्चित ही अपने आप में बड़ी बात होगी।

इन सवालों के संभावित दुरुस्त जवाब मैंने (आ. कनकनंदी) 25 वर्ष पहले से मेरे “विश्व विज्ञान रहस्य” “विश्व द्रव्य विज्ञान” आदि ग्रंथों में देता आ रहा हूँ। पुनः जिज्ञासु

वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन के लिए इस शोध-प्रबंध में देने का एक नम्र प्रयास कर रहा हूँ।

“वत्थु सहावो धम्मो”

वस्तु का स्वभाव धर्म : । यह समग्र विश्व परिणमनशील होते हुए भी शाश्वतिक है अर्थात् विश्व की कभी सृष्टि नहीं हुई, कभी विनाश नहीं होगा, परंतु प्रत्येक क्षण में परिणमन होता रहेगा। यथा -

लोगो अकिङ्गमो स्वलु अणाङ्गणिहणो सहावणिदिणब्बत्तो ।  
जीवाजीवेहिं फुडो सञ्चागासावद्यवो णिच्चो ॥

(त्रिलोक सत्र ग्रन्थ 4)

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादि अनिधन, स्वभाव से निष्पत्र जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य है।

“प्रति क्षण गच्छतीर्ति जगत्”

स्थिति जनन निरोध लक्षणं चरमचरं व जगत्

प्रतिक्षणम् । (बृहत् स्वदंभू स्त्रोत्र)

जो प्रतिक्षण गमन करता है अथवा परिणमन करता है उसको जगत् कहते हैं। चराचर रूपी जगत् प्रतिक्षण उत्पन्न होता

है, नाश होता है एवं स्थिति को प्राप्त होता है।

**नैवासत्तो जन्मसर्तो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल**

**भावतोऽस्ति । (बृहत् स्वयंभू स्तोत्र)**

सर्वथा असत् द्रव्य सर्वथा उत्पन्न नहीं हो सकता है एवं सर्वथा सत् द्रव्य का नाश नहीं हो सकता है, केवल परिवर्तन हो सकता है। जैसे दीपक की प्रज्ज्वलित अवस्था में समीपस्थ पुद्गल स्कंध प्रकाश रूप में परिणमन होते हैं एवं दीपक बुझने के पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्गल स्कंध अंधकार (तम) रूप में परिणमित हो जाते हैं। परंतु पुद्गल स्कंधों का सर्वथा नाश नहीं होता है। गीता में भी कहा है-

“नाऽसत्तो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।”

सर्वथा असत् का सद्ब्राव नहीं होता है एवं सर्वथा सत् का अभाव नहीं हो सकता है। वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि -

Nothing can be destroyed and Nothing can be created but only the form can be changed.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। कोई भी

सद्गुत द्रव्य का नाश नहीं होता है, परंतु उसके आकार-प्रकार में परिवर्तन हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि विश्व अकृत्रिम, अनादि अनिधन एवं परिणमनशील है। इस विश्व में अर्थात् लोकाकाश में जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य भरे हुए हैं। यह लोकाकाश (विश्व) अलोकाकाश के मध्य में स्थित है।

विश्व में सामान्य रूप से दो द्रव्य हैं - 1) जीव (Soul) 2) अजीव (Nonsoul)। अजीव के पांच भेद हैं - 1) पुङ्गल (Matter) 2) धर्म (Medium of Motion) 3) अधर्म (Medium of Rest) 4) आकाश (Space) 5) काल (Time) इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्य छः प्रकार हैं। इन द्रव्यों का जो स्वभाव है, वह “वस्तु स्वभाव धर्म” के अन्तर्भूत है।

## ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के परे

धर्माऽधर्मा कालो पुङ्गलजीवा यह संति जावदिवे ।

आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥

धर्माधर्मो कालः पुङ्गलजीवाः च सन्ति यावतिके ।

आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उत्तः ॥

Lokakasha is that in which  
Dharma, Adharma, Kaal, Pudgala and Jiva

exist. That which is beyond (this lokakash) is called Alokakash.

धर्म, अधर्म, काल, पुङ्गल और जीव ये पाँचों द्रव्य जितने आकाश में हैं वह तो लोकाकाश है और उस लोकाकाश के आगे अलोकाकाश है।

## **समस्त द्रव्यों को स्थान देने वाला आकाश द्रव्य -**

आकाश एक अमूर्तिक, शाश्वतिक, अनादि अनिधन, संकोच विस्तार से रहित सर्वव्यापक, अनन्तानन्त, प्रदेशात्मक, सीमा रहित, निष्क्रिय द्रव्य है। सर्व द्रव्यों को अवकाश प्रदान करना इस द्रव्य का विशेष गुण है। इस अवकाश प्रदान करने वाले विशेष गुण के कारण अन्य पाँचों द्रव्यों का आधार आकाश है। अन्य सर्व द्रव्यों से अत्यन्त वृहत् होने के कारण, सर्वव्यापक होने के कारण अन्य द्रव्य आकाश का आधार नहीं हो सकता है जबकि अन्य द्रव्यों का आकाश आधार होता है। आकाश स्वयं ही आधार होता है इसलिए स्वयं आधार आधेय है। जितने प्रदेशों में आकाश ने अन्य द्रव्यों को अवकाश दिया है अर्थात् जितने आकाश प्रदेश में अन्य द्रव्य स्थित हैं, उसको लोकाकाश कहते हैं। यह लोकाकाश

असंख्यात प्रदेशों वाला सीमित क्षेत्र है। अलोकाकाश जो अन्य द्रव्यों से रहित है, अनंत दूरी पर्यन्त मात्र आकाश ही आकाश है। उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। वस्तुतः लोकाकाश और अलोकाकाश दो द्रव्य नहीं, बल्कि एक अखंड द्रव्य के दो अंशमात्र है। यह लोक और अलोक का विभाग अर्थात् स्थापना भी अनादि से, अकृत्रिम भाव से हुई है। इस लोक अलोक की सीमा में वृद्धि-हास न होने का मुख्य कारण गति हेतुत्व वाले धर्म द्रव्य एवं स्थिति हेतुत्व वाले अधर्म द्रव्य का अवस्थान है। धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य अमूर्तिक, निष्क्रिय, लोकाकाश व्यापी, असंख्यात प्रदेशी अखंड द्रव्य हाने के कारण लोकाकाश में स्थित कोई भी द्रव्य अलोकाकाश में नहीं जा सकता है। गतिशील जीव-पुङ्गल, बिना धर्मद्रव्य की सहायता से आकाश में गति नहीं कर सकते हैं। आकाश को गति एवं स्थिति का कारण नहीं मान सकते हैं। जैसा कि आचार्यों ने कहा है-

आगासं अवगासं गमणद्विदि कारणेहिं देदि जदि ।  
उद्गंगदिप्पधाणा सिद्धार चिद्गति किध तत्थ ॥

(पश्चास्तिकाय) 92

यदि आकाश द्रव्य, चलन और स्थिरता के कारण धर्म

और अधर्म द्रव्य के गुण के साथ-साथ अवकाश देता है तब उर्ध्वगति वाले, अप्रतिहत, अनन्त शक्ति वाले, प्रसिद्ध सिद्ध जीव लोकाग्र में स्थिर क्यों हो जाते हैं ? इससे सिद्ध हुआ है कि अप्रतिहत शक्ति वाले सिद्ध जीव बिना धर्म द्रव्य के माध्यम से अलोक में नहीं जाते हैं। तब अन्य द्रव्य कैसे गति कर सकते हैं ? लोकाग्र में सिद्धों के स्थिर होने के कारण सिद्ध हुआ है कि स्थिति हेतुत्व भी आकाश का गुण नहीं है, वह तो अधर्मद्रव्य का गुण है। अलोकाकाश में अधर्मद्रव्य के अभाव से भी यदि वहाँ द्रव्य माना जाय तो उसकी स्थिति कैसे हो सकती है ? यदि आकाश को गति, स्थिति हेतुत्व मानेंगे तब अलोक हानि एवं वृद्धि का प्रसंग आयेगा।

जदि हवदि गमणाहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं ।  
पसण्ठादि उलोगहाणी लोगस्सद्य अंतं परिबुद्धी ॥

(पश्चास्तिकाव) 94

यदि आकाशद्रव्य उन जीव, पुङ्गलों को गमन करने में सहकारी कारण हो तो अलोक हानि का प्रसंग आ जायेगा और लोक के अन्त की वृद्धि हो जायेगी। इसी प्रकार वृद्धि होती जाये तब लोकाकाश असंख्यात प्रदेश परिणाम वाले धर्म-अधर्म द्रव्य

से अधिक हो जायेगा एवं कालक्रम से अलोकाकाश का अभाव हो जायेगा।

वस्तुतः अनन्त आकाश होने पर भी लोकाकाश सीमित है। विज्ञान की अपेक्षा भी लोकाकाश सीमित माना गया है। यथा

Strangely enough the mathematicians reckon that the total amount of matter which exists is limited and that the total extent of the Universe is finite. They do not conceive that there is a limit beyond which no space exists but that the totality of space is so 'curved' that a ray of light, after travelling in a direct line for a long enough time, would come back to its starting point. They have even made a preliminary estimate of the time, a ray of light would require for the round trip in the totality of curvature, not less than ten

trillion, i.e.,  $10^{19}$  years. .And such a space is very cosy quarters compared with infinity. A mathematician feels positively cramped in it.

आश्चर्य की बात यह है कि गणितज्ञों के लेखा के माध्यम से सम्पूर्ण पदार्थों का परिणाम सीमित है एवं विश्व का विस्तार सीमित है। उन्होंने यह विचार नहीं किया कि सीमित के बाद आकाश कुछ नहीं है किंतु सम्पूर्ण आकाश वक्र है जिससे कि प्रकाश किरणें सीधी रेखा से गति करने के बाद बहुत लंबे समय के बाद पुनः अपने उद्गम स्थान को वापस आ जाती है। उन्होंने एक प्रारंभिक हिसाब किया है कि प्रकाश किरणें इस सम्पूर्ण वक्र स्थान को गोलाकार रूप में एक बार घूमने के लिए आवश्यक समय लगभग  $10^{19}$  वर्ष (प्रायः  $10$  ट्रीलीयन अर्थात्  $100000000000000000000000$ ) से कुछ कम नहीं हैं एवं यह आकाश की अनन्त की तुलना में बहुत आरामदेह है। एक गणितज्ञ इसका विधिपूर्वक अनुभव कर सकता है।

**Again the same author writes :-**

“Think of the most remote and ab-

stract of all theorems of Relativity—that the Universe is finite.” This is quite inconceivable; no astronomer can secure any mental picture of a jumping off boundary beyond which there is no space.... When a computation implies that space is ‘finite’ the mathematician cannot unmake his brain and visualise finite space. He does not even try to do so. But the presumes that the equation has some concrete meaning that the meaning may in time take form and be revealed as a serviceable fact dim, but actual on the border of the unknown.”

सापेक्ष दृष्टि से भी यह विश्व सीमित है, यह पूर्णतः विचारातीत है कि कोई खगोलज्ञ ऊहा (तर्क/कल्पना) से भी इस आकाश के परे लांघ नहीं सकता है। जब एक संगणना आकाश को सीमित सूचित करती है, तब गणितज्ञ उसके मानसिक चित्र में आकाश सीमित है यह निश्चित हुआ। वैज्ञानिक भी अनन्त एवं

सीमित आकाश के बारे में कहने में पूर्ण समर्थ नहीं हैं। स्वयं आईन्स्टीन ने भी आकाश के बारे में अनेक कल्पनाएँ उपस्थित की हैं। क्या आकाश की सीमा है ? यदि आकाश की सीमा है तो उसके आगे क्या है ? अन्य एक दृष्टिकोण से आकाश की सीमा नहीं है। किंतु आकाश के बाद आकाश है जो कि विचारातीत है। आईन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त की अपेक्षा आकाश सीमित है किंतु इसका कोई अंत नहीं है।

“I suppose that every one has at sometime plagued his imagination with the question, is there an end to space? If space comes to an end, what is beyond the end? On the other hand, the idea that there is no end, but space beyond space forever is inconceivable. And so the imagination is tossed to and fro in a dilemma. Prior to the relativity theory the orthodox view was that space is finite. No one can conceive infinite space; we had to be content to

admit in the physical world an inconceivable conception-disquieting but not necessarily illogical. Einstein's theory now offers a way out of the dilemma. Is space infinite or does it come to an end ? Neither Space is finite but it has no end; "finite but unbounded" is the usual phrase."

इसी प्रकार वैज्ञानिक सिद्धान्त से भी निश्चित होता है कि आकाश एक स्वतंत्र द्रव्य है। वैज्ञानिकों ने प्रकाश किरण का प्रयोग करके एवं उसका पुनः परिवर्तित होकर आने से आकाश को सीमित माना है। किंतु वह लोकाकाश है, क्योंकि लोकाकाश में आलोक (प्रकाश) की गति का माध्यम धर्मद्रव्य है। उसके आगे धर्मद्रव्य नहीं होने के कारण पुनः प्रकाश परिवर्तित होकर लौट आया। इससे सिद्ध हुआ कि लोकाकाश सीमित है एवं लोकाकाश में ही धर्मद्रव्य है। अन्य एक दृष्टि से जिस आकाश को सीमातीत मानते हैं, वह आकाश अन्य कुछ नहीं है, अलोकाकाश है। अलोकाकाश अनन्त होने के कारण सामान्य बुद्धिजीवी के ज्ञान के बाहर है। यदि लोकाकाश को अनन्त मानेंगे तब उसका

आकार सीमातित होने के कारण उसका कोई संगठन नहीं होगा  
और बिना संगठन विश्व की स्थिति नहीं बन सकती। सम्पूर्ण  
धर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, अधर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश,  
कालद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, जीवराशि अनन्त एवं पुङ्गल राशि  
अनन्तानन्त है। किंतु सम्पूर्ण आकाश प्रदेश उपरोक्त समस्त द्रव्यों  
के प्रदेशों से भी अनन्त गुना होने के कारण, उनका परस्पर कोई  
संबंध नहीं रहेगा। अन्य द्रव्य फैलेंगे तब उनके प्रदेश परस्पर अत्यन्त  
दूर हो जाने के कारण उनका परस्पर कोई संबंध नहीं रहेगा। पदार्थ  
स्वभावतः ही सर्वदा पूर्णरूप से ही रहता है अर्थात् उसके सभी  
प्रदेश अथवा अंश परस्पर मिलकर ही रहते हैं। जैसे एक घड़े के  
सभी परमाणु परस्पर एक निश्चित आकार से संबंधित होकर के  
रहते हैं। यदि ये परमाणु परस्पर बिछुड़ जायेंगे तब घड़ा नहीं  
रहेगा एवं घड़े का अर्थक्रिया कारित्व जो अर्थ जल धारण है, वह  
भी नहीं रहेगा। इसी प्रकार धर्म-अधर्म द्रव्य के अभाव में तथा  
लोकाकाश विस्तृत होते-होते अनन्त होने से तथा अलोकाकाश  
में गति हेतुत्व एवं स्थिति हेतुत्व मानने से, विश्व की उत्थँखलता  
तथा द्रव्यों के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। इससे सिद्ध हुआ कि  
अनन्त अलोकाकाश के मध्य में असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है,

जिसमे गति एवं स्थिति हेतु रूप धर्मद्रव्य एवं अधर्मद्रव्य व्याप्त है।

लोकाकाश के ऊर्ध्व, अधो, पार्श्व, विपार्श्व में अर्थात् सम्पूर्ण दिक् में अनन्त आकाश होने के कारण लोकाकाश, अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में है। जिस प्रकार एक वर्तुलाकार के बाह्य भाग में कहीं भी एक बिन्दु लेंगे; वह बिन्दु उस वर्तुलाकार वस्तु के पृष्ठ भाग का मध्य बिन्दु ही होगा, उसी प्रकार लोकाकाश के बाह्य भाग में सर्वत्र अनन्त आकाश होने के कारण लोकाकाश, अलोकाकाश के मध्य भाग में है।

लोक-अलोक का वर्णन जैन धर्म में विशद रूप में पाया जाता है पर अन्यदर्शन में लोक का अपने मतानुसार वर्णन पाये जाने पर भी अलोक का वर्णन नहीं पाया जाता। आधुनिक विज्ञान में जैसा जैन धर्म में स्पष्ट वर्णन पाया जाता है, वैसा तो स्पष्ट वर्णन नहीं पाया जाता है फिर भी आईन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक द्रव्य प्रतिपक्षी होने के कारण विश्व का भी प्रतिपक्षी प्रतिविश्व अलोकाकाश होता है। जैन धर्म के अनुसार विश्व का घनफल 343 घन राजू है जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से अनुमानतः असंख्यात घन आलोक वर्ष (प्रकाश वर्ष) के बराबर है। विश्व के मुख्य तीन भेद हैं 1 अधोलोक (नरकलोक) 2 मध्यलोक (मनुष्यलोक) 3 ऊर्ध्वलोक

(स्वर्ग)। लोकाकाश के दशों दिशाओं में अनन्त-अनन्त आकाश होने के कारण लोक (ब्रह्माण्ड) अलोकाकाश के बीचों बीच है।

अधोलोकमें सात नरक एवं नित्य निगोदिया हैं। मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। इन द्वीप समुद्रों के साथ-साथ असंख्यात सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र इस मध्यलोक में ही है। आधुनिक खगोल विज्ञान के अनुसार भी असंख्यात सूर्य, चंद्र, निहारिकायें हैं यह सिद्ध हो गया है। इस संबंधी विस्तृत वर्णन मैंने (आ.कनकनंदी) मेरी 'विश्व विज्ञान रहस्य' पुस्तक में किया है, वहाँ अवलोकनीय है। ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग एवं सिद्धशिला है। विश्व को सम्पूर्ण दिशा में वेष्टित करके वातवलय हैं। ये वातवलय भी विश्व के अन्तर्गत है। नग्न चक्षु में जो आकाश नीला दिखायी देता है वह आकाश का वर्ण नहीं है क्योंकि आकाश शुद्ध अमूर्तिक द्रव्य है। पृथ्वी से जो आकाश नीला दिखाई देता है उसका वैज्ञानिक कारण पृथ्वी का वातावरण या वायुमण्डल है। पृथ्वी के पर्यावरण में धूलिकण, जलकण एवं विभिन्न वायु होती है जिसके कारण सूर्य किरण इसमें प्रतिफलित होती है, जिसके कारण आकाश नीला दिखायी देता है, इसे वर्ण विश्लेषण कहते हैं। पृथ्वी से कुछ दूर अन्तरिक्ष में जाने पर आकाश का वर्ण नीला नहीं दिखायी देता है। जैन दर्शन के अनुसार उपरोक्त कारणों

के साथ-साथ प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान नीलमणि से निर्मित है। उस नीलमणि की प्रभा से आकाश नीला दिखायी पड़ता है। आकाश का विशेष वर्णन उमास्वामी के अनुसार कुछ निम्नोक्त प्रकार है -

अरकाशस्यानन्तरः ॥ 1

अरकाशस्यानन्तरः प्रदेशः सन्ति ।

The number Of Pradesas in space  
is infinite.

आकाश के अनन्त प्रदेश हैं।

छहों द्रव्यों में विशालतम् द्रव्य आकाश है यह द्रव्य सर्वव्यापी है, इसके प्रदेश अनन्त हैं। जिसका अन्त / अवसान नहीं है उसको अनन्त कहते हैं। लोकाकाश आकाश का एक बहुत छोटा भाग है और इसके असंख्यात प्रदेश हैं। अलोकाकाश सम्पूर्ण दिशाओं में अनन्त तक फैला हुआ है।

लोकाकाशेऽवग्रहः ॥ 11

धर्मदीनाम् द्रव्याणाम् लोकाकाशे अवग्रहः ।

These substances Dharma,  
Adharma, Jiva, Ajiva, etc. exist only in  
Lokakasha.

इन धर्मादिक द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में हैं।

आकाश एक सर्वव्यापी अखण्ड द्रव्य होते हुए भी जिस आकाश प्रदेश में जीवादि द्रव्य रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं, उसको छोड़कर अन्य अवशेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

**प्रश्न :-** असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनन्तानन्त जीव हैं, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण भिन्न-भिन्न कालाणु हैं तथा एक धर्म और एक अधर्मद्रव्य है; ये सब किस तरह इस लोकाकाश में अवकाश पा लेते हैं।

**उत्तर :-** जैसे एक कोठरी में अनेक दीपों का प्रकाश व एक गूढ़नाग रस के गुटके से बहुत सा सुवर्ण व एक ऊँटनी के दूध से भरे घट में मधु का भरा घट व एक तहखाने में जयजयकार शब्द व घंटा आदि का शब्द विशेष अवगाहना गुण के कारण अवकाश पाते हैं, वैसे ही असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्तानन्त जीवादि भी अवकाश पा सकते हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य तथा जीवद्रव्य अमूर्तिक द्रव्य होने के कारण उनकी अवगाहना की कोई समस्या नहीं है। शेष रहा पुद्गलद्रव्य। पुद्गलद्रव्य में सूक्ष्मत्व परिणमन शक्ति होने के कारण आकाश में अवगाहन शक्ति होने के कारण अनन्त पुद्गलद्रव्य,

असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में समावेश होकर रह जाते हैं। जैसे अगरबत्ती को जलाने से उस अगरबत्ती के धुएँ से एक कमरा भर जाता है, इस धुएँ के पुऱ्हल स्कंध उस छोटी सी अगरबत्ती में ही समाहित थे। अभी आधुनिक विज्ञान से भी सिद्ध हुआ है कि कुछ नक्षत्र में ऐसी धातु है जिसका माचिस के बराबर टुकड़े का द्रव्यमान 60 से लेकर 250 टन तक हो सकता है। इतना अधिक द्रव्यमान होने का कारण वहाँ के परमाणु का बंधन अधिक घन स्वरूप से होता है। वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध किया कि एक हाथी को पूर्ण रूप से दबा दिया जायेगा, तब वह हाथी सुई के छेद से निकल जायेगा। इसका कारण यह कि उसमें मौजूद समस्त परमाणु समूह एक ही आकाश प्रदेश में अथवा एक परमाणु में, एक परमाणु के आकार में अनन्तानन्त परमाणु बंध विशेष से बंधकर इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए एक आकाश प्रदेश में एक से लेकर तीन व संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणु समाहित हो सकते हैं। जब एक ही आकाश प्रदेश में अनन्त परमाणु भी रह सकते हैं तो असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनन्तानन्त परमाणु क्यों नहीं रह सकते? अर्थात् रह सकते हैं।

धर्मऽधर्मयोः कृत्स्ने । 13

धर्म, धर्मयोः कृत्स्ने लोकाकाशे अवगाहे भवति ।

The whole Universe or Loka is place of Dharma and Adharma dravyas.

धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश में है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उस सम्पूर्ण लोकाकाश के प्रदेश में धर्म तथा अधर्म द्रव्य के प्रदेश व्याप्त होकर रहते हैं अर्थात् लोकाकाश के एक प्रदेश में धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य के एक प्रदेश का अवस्थान जैसे टेबल के ऊपर पुस्तक है उस प्रकार नहीं है परंतु जैसे दूध में घी, तिल में तेल, ईंधन में अग्नि रहती है, उसी प्रकार धर्म और अधर्म द्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के सम्पूर्ण प्रदेश में व्याप्त रहते हैं। आधुनिक विज्ञान में भी माना गया है कि 'ईथर' तथा 'गुरुत्वाकर्षण' शक्ति आकाश में व्याप्त होकर रहती है इसलिए निरवशेष व्याप्ति का प्रदर्शन करने के लिए सूत्र में (कृत्स्ने) वचन का प्रयोग किया है क्योंकि धर्म और अधर्म द्रव्य निरन्तर सारे लोकाकाश में व्याप्त होकर रहते हैं।

**प्रश्न :-** धर्म, अधर्म आदि के प्रदेश परस्पर अविरोध रूप से एक स्थान में कैसे रहते हैं ?

**उत्तर :-** अमूर्तिक होने से धर्म, अधर्म और आकाश के प्रदेशों में परस्पर विरोध नहीं है। जब मूर्तिमान जल, भृम, रेत आदि पदार्थ बिना विरोध के एक स्थान में रह सकते हैं तब इन अमूर्तिक द्रव्यों की एकत्र स्थिति में तो कहना ही क्या? अर्थात् जैसे पानी से भरे हुए घट में चीनी, रेत, भृम, लोहे के काँटे आदि प्रवेश कर जाते हैं, वैसे ही परस्पर विरोध रहित जीवादि अनन्त पदार्थ लोकाकाश में रह जाते हैं। इसलिए अमूर्तिक होने से इन धर्मादि के प्रदेशों का परस्पर एक स्थान में रहने में कोई विरोध नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इनका अनादि संबंध परिणामिक स्वरूप होने से भी कोई विरोध नहीं है। भेद, संघात, गति, परिणामपूर्वक आदिमान संबंध वाले किसी स्थूल स्कंधों के प्रदेशों में परस्पर विरोध भी हो सकता है - अर्थात् बहुत से प्रदेश वाले पदार्थ थोड़े स्थान में नहीं रह सकते परंतु भेद संघात वाले पदार्थों के समान धर्मादि पदार्थों का आकाश के साथ आदि संबंध नहीं है अपितु इनका परिमाणिक संबंध है, अतः इनमें परस्पर प्रदेशों का अविरोध सिद्ध है अर्थात् अमूर्तिक पूर्वापर भावरहित अनादि संबंधी धर्मादिक का परस्पर विरोध नहीं है।

ब्रह्माण्ड की लम्बाई, चौडाई तथा मोटाई (वेध), क्षेत्रफल, घनफल आदि को जानने के लिए रज्जू का परिज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। जैन दर्शन में दूरी को मापने के लिए महानतम ईकाई (unit) में रज्जू एक ईकाई है। जिस प्रकार आधुनिक गणित एवं विज्ञान में प्रकाश वर्ष (Light Year) महत्तम ईकाई है। वैसा ही जैन दर्शन के अनुसार रज्जू भी एक बड़ी ईकाई (unit) है। परंतु रज्जू की लम्बाई (Length) प्रकाश वर्ष (Light Year) की लम्बाई से भी अत्याधिक अधिक है। जस्स असंख्येज्जर्ज सो वि असंख्येज्ज-ज्ञेयणाणि पुढं । गच्छेदि एष्ठ समय अगच्छदि तेत्तियासिं एि ॥

169 (तिलो. प.भा. 1 अ. 3 पृ.सं. 315)

जिस देव की आयु असंख्यातवर्ष की है, वह एक समय में असंख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है। इस गति से यदि कोई देव लगातार छः महिना गमन करेगा तो वह जितनी दूरी पार करेगा वह दूरी एक रज्जू के बराबर होगी।

आधुनिक गणित तथा विज्ञान में समय की एक छोटी ईकाई सैकण्ड है उससे भी अत्यन्त छोटी ईकाई जैन धर्म में वर्णित समय है। जो कि सेकेण्ड के असंख्यातवें भाग मात्र समय है।

## ब्रह्माण्ड का वर्णन गणितीय आयाम से

**प्राकृतिक ब्रह्माण्ड की स्थिति -**

सव्वायासमण्ठं तस्स य बहु-मज्ज-संठिअरे लोअरे ,  
सरे केण वि णेव कअरे ण य धरिअरे हरि-हरदिहिं ॥

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा. 115 पृष्ठ सं. 55)

यह समस्त आकाश अनन्त प्रदेशी है। उसके ठीक मध्य में भले प्रकार से लोक स्थित है। उसे किसी ने बनाया नहीं है, और न हरि, हर वगैरह उसे धारण ही किये हुए हैं। लोक का क्षेत्रफल सात राजु का घन अर्थात् 343 राजु प्रमाण है। अतः आकाश के बीचोंबीच 343 राजु क्षेत्र में यह जगह स्थित है। उसे चारों ओर से घनोदधि, घनवात, और तनुवात नाम की तीन वायु धेरे हुए हैं। वे ही लोक को धारण करती हैं। त्रिलोकसार ग्रंथ में 'बहुमज्जदेसभागम्हि' लिखा है, और उसका अर्थ किया है - 'आकाश के असंख्यात प्रदेश वाले मध्य भाग में', क्योंकि लोकाकाश जितने आकाश में लोक स्थित है आकाश का उतना भाग असंख्यात प्रदेशी है। इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया

है - 'बहु' अर्थात् आठ गौ के स्तन के आकार के आकाश के मध्य प्रदेश जिस भाग में पाये जाते हैं, उस भाग में'। आशय यह है कि लोक के ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत के नीचे गौ स्तन के आकार के आठ प्रदेश स्थित हैं जिस भाग में वे प्रदेश स्थित हैं, वही लोक का मध्य है, वही समस्त आकाश का मध्य है, क्योंकि समस्त आकाश के मध्य में लोक स्थित हैं, और लोक के मध्य में वे प्रदेश स्थित हैं। अन्य दार्शनिक मानते हैं कि यह जगत् ईश्वर द्वारा बनाया हुआ है, और कुछ देवता उसे धारण किये हुए हैं। वस्तुतः जगत् को न किसी ने बनाया है और न कोई उसे धारण किये हुए हैं। वह अकृत्रिम है और वायु उसको धारण किये हुए हैं।

### ब्रह्माण्ड नित्य है -

अण्णैण्ण-एवेसेण य दब्बरणं अच्छणं हवे लोअरे ।  
दब्बरणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुण्ह णिच्चत्तं ॥ 116

द्रव्यों की परस्पर में एकक्षेत्रावगाहरूप स्थिति को लोक कहते हैं। द्रव्य नित्य है, अतः लोक भी नित्य जानो। जितने आकाश में जीव, पुङ्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। छहों द्रव्य अनादि और अनन्त हैं, अतः लोक को भी अनादि और अनन्त जानना चाहिए।

सर्वाग्रसमणांतं तस्स य बहुमज्जदेसभागम्हि ।  
लोगोसंख्यपदेसरे जगसेठिघणप्पमाणो हु ॥ ३ त्रि.सा.

सर्व आकाश अनन्त प्रदेशी है। उस अनन्त प्रदेशी-सर्वाकाश के ठीक मध्य-भाग में अतिशय रचनारूप जो असंख्यात प्रदेश हैं वहीं आकाश के खण्ड स्वरूप लोक है अथवा जो गोस्तनाकार आठ प्रदेश आकाश के मध्य में हैं, वही आठ प्रदेश जिसके मध्य में हैं, ऐसे आकाश के खण्ड को लोक कहते हैं। लोक असंख्यात प्रदेशी हैं और वह निश्चय से जगच्छ्रेणी के घन प्रमाण है। लोक के असंख्यात प्रदेश सम संख्या स्वरूप हैं। अतः एक प्रदेश मध्य न बनकर दो प्रदेशों का मध्य बनता है और लोक घन स्वरूप है, अतः दो प्रदेशों का घन रूप क्षेत्र आठ प्रमाण है।

लोकाकाश अलोकाकाश के मध्य भाग में स्थित है। अतः अलोकाकाश के मध्य आठ प्रदेश हैं, वे ही आठ प्रदेश लोकाकाश के भी मध्य प्रदेश बन जाते हैं। सुदर्शन मेरु के नीचे ठीक मध्य में आठ प्रदेश स्थित हैं। अतः सुमेरु का मध्य भी इन आठ प्रदेशों पर ही होता है। इसलिए अलोकाकाश का, लोकाकाश का और सुमेरु का, तीन लोक का, तिर्यक् लोक का तथा जम्बुद्वीप आदि का मध्य प्रदेश वही आठ मध्य प्रदेश हैं।

क्षेत्र परिवर्तन का प्रारम्भ, गोस्तनाकार इन आठ मध्य प्रदेश से होता है। जघन्य अवगाहना वाला सूक्ष्म निगोदिया जीव अपने आठ मध्य के प्रदेशों को इन आठ मध्य प्रदेशों पर स्थापित कर जन्म लेता है। जितने आकाश प्रदेश को वह रोकता है उतनी ही बार अपने आठ मध्य प्रदेशों को इन पर स्थापित कर जन्म लेता है। इसलिए आठ मध्य प्रदेश क्षेत्र परिवर्तन का प्रारम्भ स्थान है। जघन्य अवगाहन वाला सूक्ष्म निगोदिया जीव जब अपने आठ मध्य प्रदेशों में स्थापित कर जन्म लेता है तब आठ मध्य प्रदेश, जीव के शरीर के भी आठ मध्य प्रदेश होते हैं।

इन आठ मध्य प्रदेशों के अवलम्बन से लोकाकाश की चारों दिशाओं का व्यवहार होता है अर्थात् आठ प्रदेश से नीचे अधोलोक का प्रारम्भ, आठ प्रदेश के ऊपर एवं सुमेरु के चूलिका पर्यन्त मध्यलोक का व्यवहार है एवं चूलिका के एक बालाग्र के ऊपर से उर्ध्वलोक का प्रारम्भ होता है। इसलिए वे आठ मध्य प्रदेश लोक के माप का एक केन्द्र स्थल हैं।

अरहंत केवली तेरहवें गुणस्थान के अन्त में जब केवली-समुद्भात करते हैं तब लोकपूरण अवस्था में इन आठ मध्य के प्रदेशों पर केवली के आठ मध्य प्रदेश स्थित होकर लोकाकाश

को व्याप्त करते हैं। इसलिए समुद्रधात की अपेक्षा भी ये आठ मध्य प्रदेश हैं। यह लोक केवल माया स्वरूप, केवल ब्रह्म स्वरूप अथवा शून्य रूप नहीं है। इस लोक में सत् स्वरूप जीव-अजीव रूप द्रव्य पूर्ण रूप से व्याप्त है।

### **ब्रह्माण्ड का विस्तार -**

**उदयवलं आयामं वासं पुञ्चावरेण भूमिमूहे ।  
सत्तेकपंचएक्ष य रज्जूमज्जरम्हि हरणिचयं ॥ 113त्रि.सा.**

लोक की ऊँचाई (उदय) 14 राजू प्रमाण है। इसका आधा  $\frac{14}{2} = 7$  राजू परिमाण दक्षिणोत्तर आयाम, (चौडाई) हैं। दक्षिणोत्तर दिशा में लोक के अधो भाग से ऊपर 14 राजू ऊँचाई पर्यन्त लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है, कहीं भी हीनाधिक नहीं है। पूर्व - पश्चिम दिशाओं को व्याप्त अधो एवं मध्य लोक में क्रम से भूमि सात राजू, मुख एक राजू अथवा उर्ध्व लोक के मध्य में भूमि पांच राजू और मुख अधर एवं शिखर पर एक राजू प्रमाण है। इन दोनों मुख और भूमि के बीच में हानि और वृद्धि चय का साधना चाहिए। आदि परिमाण का नाम भूमि, अन्त परिमाण का नाम मुख, घटने का नाम हानि और क्रम से बढ़ने का नाम चय है।

## लोक की परिधि :-

युव्वादरेण परिही उगुदालं सरहियं तु रजूणं ।  
दक्षिण उत्तरदे पुण बदलं होंति रजूणं ॥ 121 त्रि. सा.

लोक की परिधि पूर्व-पश्चिम अपेक्षा  $39\frac{43}{120}$  राजू है तथा दक्षिणोत्तर परिधि 42 राजू है, कारण कि लोक दक्षिणोत्तर सर्वत्र सात राजू चौड़ा है अर्थात् ऊपर भी सात राजू चौड़ा है और नीचे भी सात राजू चौड़ा है। लोक की ऊँचाई चौदह राजू है अतः ऊपर नीचे की सात-सात राजू चौडाई और दोनों पाश्व भागों की चौदह - चौदह राजू ऊँचाई जोड़ने से  $(7 + 7 + 14 + 14 +) = 42$  राजू दक्षिणोत्तर परिधि होती है।  $39\frac{43}{120}$  का माप किस प्रकार आया ? अधोलोक में त्रस-नाड़ी के दोनों ओर अ और ब दो समकोण त्रिभुज हैं। प्रत्येक त्रिभुज की भूजा सात राजू और कोटि तीन राजू है। अतः दोनों का वर्ग अर्थात्, कर्ण का वर्ग =  $(7)^2 + (3)^2$  वर्ग राजू =  $(49 \text{ वर्ग राजू} + 9 \text{ वर्ग राजू}) = 58 \text{ वर्ग राजू}$  प्राप्त हुआ। एक पाश्व भाग का 58 वर्ग राजू है तो दोनों पाश्व भागों का कितना होगा ? ऐसा पूछने पर दो के वर्ग पर  $(2 \times 2 = 4)$  का गुणा करना चाहिए, क्योंकि वर्ग राशि का गुणाकार वर्ग रूप ही होता है। अतः  $58 \times 4 = 232$  वर्ग

राजू हुआ। 232 का वर्ग मूल  $15\frac{7}{30}$  राजू है। यही अधोलोक के दोनों त्रिभुजों के कर्णों की परिधि है।

उर्ध्वलोक में त्रसनाडी के अतिरिक्त क, ख, ग और घ ये चार समकोन त्रिभुज हैं। प्रत्येक त्रिभुज की भुजा  $\frac{7}{2}$  राजू और कोटी दो राजू है। अतः प्रत्येक त्रिभुज के कर्ण का वर्ग  $(\frac{7}{2})^2 + (2)^2 = \frac{49}{4} + \frac{4}{1} = \frac{65}{4}$  वर्ग राजू हुआ। एक त्रिभुज का  $\frac{65}{4}$  वर्ग राजू है, तो चार त्रिभुजों का कितना होगा? इस प्रकार त्रैराशिक कर  $\frac{65}{4}$  में  $(4 \times 4) = 16$  गुणा करना चाहिए, क्योंकि वर्ग राशि का गुणाकार वर्ग रूप ही होता, अतः  $\frac{65}{4} \times \frac{16}{1} = 260$  वर्ग राजू प्राप्त हुआ। 260 का वर्गमूल  $16\frac{4}{32}$  राजू है, जो उर्ध्व लोक के चारों कर्णों की परिधि है।

लोक ऊपर एक राजू चौड़ा और नीचे सात राजू चौड़ा है, अतः  $7 + 1 = 8$  राजू हुआ। उर्ध्व एवं अधो लोक की साधिक  $(\frac{7}{30} + \frac{4}{32})$  परिधि के बिना शेष परिधि  $(15 + 16) = 31$  राजू में आठ राजू मिलने से  $(15 + 16 + 8) = 39$  राजू होते हैं। साधिक दोनों राशियों  $(\frac{7}{30} + \frac{4}{32})$  के हर ( $30, 32$ ) को आधा ( $15, 16$ ) कर इन्ही साधिक राशियों के अंशों से समच्छेद करने पर  $\frac{15}{15} \times \frac{4}{32}$  और  $\frac{16}{16} \times \frac{7}{30}$

प्राप्त होते हैं जिनका गुणनफल  $(\frac{15}{15} \times \frac{4}{32}) = \frac{60}{480}$  और  $(\frac{16}{16} \times \frac{7}{30}) = \frac{112}{480}$  प्राप्त होते हैं। इन दोनों का जोड़  $(\frac{60}{480} + \frac{112}{480}) = \frac{172}{480}$  है। इसे चार से अपवर्तित करने पर  $\frac{43}{120}$  राजू दोनों लोकों के अधिक का परिमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार लोक की परिधि - पूर्व पश्चिम अपेक्षा  $39\frac{43}{120}$  राजू परिणाम है।

लोक शून्य स्वरूप या माया स्वरूप नहीं होने के कारण एवं निश्चित संस्थान वाला होने के कारण इसका क्षेत्रफल एवं घनफल आगे दिया गया है।

### लोक के घनफल एवं क्षेत्रफल लाने के सूत्र :

मुहभूमीण विसेसे उदयहिदे भूमुहादु हाणिचयं ।  
जोगदले पदगुणिदे फलं घण्टे वेधगुणिद फलं ॥ 144 त्रि.सा.

मुख और भूमि में जिसका परिमाण अधिक हो, उसमें से हीन परिमाण को घटाकर ऊँचाई (उदय) का भाग देने से भूमि और मुख की हानि तथा चय प्राप्त होता है। भूमि और मुख के योग को आधा कर पद (ऊँचाई) से गुणा करने पर क्षेत्रफल की प्राप्ति होती है तथा उस क्षेत्रफल में वेध का गुणा करने से घनफल प्राप्त होता है।

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{\text{भूमि} + \text{मुख}}{2} \times \text{ऊँचाई}$$

**घनफल** = क्षेत्रफल × ऊँचाई

अधो लोक में भूमि सात राजू, मुख एक राजू, उत्सेध (ऊँचाई) सात राजू है।

**अधोलोक का क्षेत्रफल** =  $\frac{\text{भूमि} + \text{मुख}}{2} \times \text{ऊँचाई}$

$$= \frac{7+1}{2} \times \frac{7}{1} = \frac{8}{2} \times 7 = 28 \text{ राजू}$$

ऊर्ध्वलोक में भूमि एक राजू, मध्य में (मध्यलोक की) मुख पांच राजू, ऊपर मुख एक राजू, उत्सेध (ऊँचाई) सात राजू है।

**ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल** =  $\frac{\text{भूमि} + \text{मुख}}{2} \times \text{ऊँचाई}$

$$= \frac{1+5}{2} \times \frac{7}{1} = \frac{6}{2} = \frac{7}{1} = 21 \text{ राजू}$$

**सम्पूर्ण लोक का क्षेत्रफल** = अधोलोक का क्षेत्रफल +  
ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल

$$= 28 + 21 = 49 \text{ राजू} \text{ (इसको जगत्प्रतर कहते हैं)}$$

**लोक का क्षेत्रफल** = जगश्रेणी का वर्ग अर्थात् जगत्प्रतर के समान है। जगश्रेणी सात राजू परिणाम है। इसलिए लोक का क्षेत्रफल अर्थात्

$$\text{जगत्प्रतर} = 7 \times 7 = 49 \text{ वर्ग राजू है।}$$

जगसेढीय वजगरे जगपदर होडि तजघणरे लोजरे।

इदि बोहिय संखाणस्सेत्तो पगदं परुवेयो // 112 त्रि.सा.

जगश्रेणी का वर्ग जगत्प्रतर और जगश्रेणी का घन  
घनलोक होता है।

**सम्पूर्ण लोक का घनफल** = सम्पूर्ण लोक का क्षेत्रफल ×  
उत्सेध

**सम्पूर्ण लोक का घनफल** = (अधोलोक का क्षेत्रफल +  
ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल) × उत्सेध =  $(28 + 21) \times 7$   
 $= 49 \times 7 = 343$  राजू

यहाँ पर जो उत्सेध है वह दक्षिण का उत्तर का व्यास है,  
जो कि सर्वत्र समान है।

### वातवलय :-

अनादि निधन लोक को वेष्टित करके तीन वातवलय  
हैं। जिस प्रकार शरीर को वेष्टित करके चर्म है, वृक्ष को वेष्टित  
करके छाल है, उसी प्रकार लोक को वेष्टित करके तीन वातवलय  
हैं।

गरोमुत्तमुञ्जणाणावणणाणं धणंबुधतणूण हवे ।

ब्रादणं वलवत्तव्यं रुक्खस्स तवं व लोगस्स // 123 त्रि.सा.

जिस प्रकार वृक्ष की छाल संपूर्ण वृक्ष को वेष्टित किये हुये होती

है, उसी प्रकार संपूर्ण लोक को वेष्टित करने वाले तीन वातवलय हैं। लोक को वेष्टित करते हुए घनोदधि वातवलय है, घनोदधि वातवलय को घनवातवलय वेष्टित किये हुए हैं, घनवातवलय को तनुवातवलय वेष्टित किये हुए हैं। घनोदधि वातवलय का वर्ण गोमूत्र के सदृश है, घनवातवलय का वर्ण मूँगा के सदृश है, तनुवातवलय अनेक प्रकार के रंगों को धारण किये हुए हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार यह पंच वर्ण वाला है।

लोक अकृत्रिम, शाश्वतिक होने का कारण इसका कोई कर्ता नहीं है। उसी प्रकार इसको धारण करने वाला वासुकि सर्प आदि भी नहीं है।

पद्मर्मं लोयाधारो घणोवही इह घणोणित्वो तत्त्वो ।  
तत्परदो तनुवादो अंतम्मि णहं णिआधारं ॥272  
तिलोयपण्णती

इसमें से प्रथम घनोदधि वातवलय लोक का आधार है। घनोदधि वातवलय का आधार घनवातवलय है, घनवातवलय का आधार तनुवातवलय है। अंत में तनुवातवलय आकाश के आधार पर है एवं आकाश निज आधार पर है। यदि इस आकाश को अन्य आधार माना जाये, तब वह आधार आकाश से भी बड़ा होना

चाहिए। किंतु आकाश सर्वव्यापी, अनन्त होने के कारण उसका आधार अन्य कोई द्रव्य नहीं है। यदि विश्व का आधार वासुकी सर्प माना जाय, तो वासुकी सर्प का अन्य आधार होना चाहिए। उस अधार का पुनः अन्य आधार होना चाहिए इस प्रकार अनवस्था दोष प्राप्त होता है। एक विचारणीय बात यह है कि इतने विशाल लोक को एक सर्प कैसे धारण कर सकता है? यदि सर्प अनन्त शक्तिवाला जीव है, तब वह परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा में ही अनन्त शक्ति रहती है, अन्य जीव में नहीं। यदि परमात्मा है तब सर्प का आकार (रूप) क्यों धारण किये हुए हैं? परमात्मा होकर विश्व को धारण करने का कष्ट क्यों उठा रहे हैं?

हरिवंश पुराण में जिनसेनाचार्य ने वातवलय का वर्णन करते हुए लिखा है कि तीनों वातवलय से वेष्टित यह लोकाकाश ऐसा जान पड़ता है कि मानो आलोकाकाश रूपी शत्रु को जीतने के लिए कवच वेष्टित सामन्त हो। ये तीनों वातवलय दण्डाकार लम्बे हैं, पुष्ट हैं, नीचे चारों ओर वेष्टित हैं, चश्मल हैं एवं लोक के अन्त तक हैं।

**वातवलयों का बाहुल्य -**  
**ज्ञेयण वीस सहस्रं वहलं वलयतयाण प्रतीयं ।**

**भूलोयत्तले परसे हेडाको जाव रज्जत्ति ॥ 124 त्रि. सा.**

लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पाश्व भागों में नीचे से लगाकर एक राजू की ऊँचाई पर्यन्त तथा आठों भूमियों के नीचे तीनों वातवलय (प्रत्येक) बीस-बीस हजार योजन मोटाई वाले हैं।

**सत्तमस्थिदिपणिधिम्हि य सग् पण्चत्तारिपण्चउष्टुतियं ,  
तिरिये बह्ये उड्डे सत्तमतिरिए च उत्तकमं ॥ 125 त्रि.सा.**

अब उपरिम वायु के बाहुल्य का निर्णय करने के लिए कहते हैं - दोनों पाश्व भागों में एक राजू से उपर सप्तम पृथ्वी के निकट घनोदधि वातवलय सात योजन, घन वातवलय पांच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाई वाले हैं। इस सप्तम पृथ्वी के उपर क्रम से घटते हुए तिर्यक् लोक के समीप तीनों वातवलय क्रम से पांच, चार, तीन योजन बाहुल्य वाले तथा यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रम से बढ़ते हुए सप्तम पृथ्वी के निकट- सदृश सात, पांच, चार योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं तथा ब्रह्म लोक से क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों वातवलय उर्ध्व लोक के निकट तिर्यक् लोक सदृश्य पांच, चार, तीन योजन (4000 मील = एक महायोजन) बाहुल्य वाले हो जाते हैं। लोक के उपरिम भाग में पवनों का

बाहुल्य प्रकट करते हैं -

करेसाणं दुग्मेक्षं देसूणेक्षं च लैवसिहरम्मि ।  
ऊणधणूणं पमरणं पणुवीसज्जहिवचारिस्वं ॥ 126 ॥ त्रि. सा.

लोक के शिखर पर पवनों का परिमाण क्रमशः दो कोश,  
एक कोश और एक से कुछ कम कोश है। लोक के अग्र भाग पर  
घनोदधिवातवलय की मोटाई दो कोश, घनवातवलय की मोटाई  
एक कोश और तनुवातवलय की मोटाई एक कोश से कुछ कम  
है। यहाँ कुछ कम का परिमाण 425 धनुष है, अर्थात् 2000  
धनुओं में से 425 धनुष कम कर देने पर  $(2000 - 425) =$   
1575 धनुष शेष रहता है। यही तनुवातवलय का बाहुल्य  
(मोटाई) है। लोक के अग्र भाग में स्थित घनोदधिवातवलय की  
मोटाई दो कोश अर्थात् 4000 धनुष है। घनवातवलय की मोटाई  
एक कोश अर्थात् 2000 धनुष है और तनुवातवलय की मोटाई  
1575 धनुष अर्थात् 6300 हस्त परिणाम है, क्योंकि एक धनुष  
के चार हस्त होते हैं।

## वैज्ञानिक खोज से परे

# सौर मण्डल में केवल 9(नव) ग्रह नहीं 88 ग्रह हैं

अभी-अभी जिनेवा में कार्यरत खगोलविदों ने अपनी लंबी खोज के बाद यह ज्ञात किया कि और भी छह ग्रह सौरमण्डल के बाहरी संसार में हैं। इसी प्रकार टेक्सास की वेधशाला में कार्यरत वैज्ञानिकों ने अन्य तीन ग्रहों का पता लगाया है। जिन्हें बृहस्पति के निकट बताया जा रहा है। “केलिफोर्निया विश्वविद्यालय” के शोधकर्ताओं ने इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा है कि वास्तव में इन ग्रहों के होने से कोई इन्कार नहीं करता है परंतु इनका पुरी तरह पकड़ में आना संभव नहीं है। इनका कारण यह है कि आकाश में ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण के भारी दबाव के कारण इन ग्रहों की चमक स्पष्ट नहीं होती है। पिछले दिनों अंतर्राष्ट्रीय खगोलविदों की युनियन का एक बड़ा सेमिनार हुआ जिनमें 87 देशों के दो सौ खगोलविदों ने हिस्सा लिया सेमिनार की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले पांच सालों में

लगभग 50 नये ग्रहों की खोज की गई है। इस सेमिनार में इन नये खोजे गये 9 ग्रहों की भी चर्चा हुई जिसमें यह स्पष्ट किया कि निश्चित ही ग्रह अपनी जगह बदलते हैं। और इनकी चहल कदमी चलती रहती है जिनका आप आसानी से पता नहीं लगा सकते हैं। किंतु इनकी हरकत सौरमंडलीय स्थितियों पर ही निर्भर करती है। दूरी बहुत है, उनका पकड़ना आसान भी नहीं है। इसलिए इन ग्रहों के खोज के विषय में विस्तार से नहीं कहा जा सकता है। उपर्युक्त नई खोज एक महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक एवं खगोलविदों की सत्यनिष्ठा एवं प्रगतिशीलता की वजह से वे सतत सत्य की खोज में लगे रहते हैं। वे केवल पुस्तकीय ज्ञान, सुन सुनैया या रट-रटैया के विषय में विश्वास नहीं करते हैं। इसलिए आज वैज्ञानिक खोज, सोच, सिद्धान्त एवं उपकरण का सीधा लाभ धर्म, दर्शन, न्याय, राजनीति, सामजिक एवं शिक्षा क्षेत्र में स्वीकार्य होते जा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने जो नये ग्रहों की खोज की है उन ग्रहों के साथ-साथ और भी अनेक ग्रह हमारे सौर मंडल में हैं, इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में जो अनेक ग्रह हमारे सौरमंडल हैं (असंख्यात सौरमंडल) तथा उनमें भी अनेक ग्रह

होते हैं। हमारे सौरमंडल में 88 (अद्वासी) ग्रह होते हैं जो की जैन प्राचीन कॉसमोलॉजि (ब्रह्माण्डीय विज्ञान) में वर्णित है। ये 88 ग्रह निम्न है -

### 88 ग्रहों के नाम निर्देश

- |               |                |                     |
|---------------|----------------|---------------------|
| 1) बुध        | 2) शुक्र       | 3) गुरु             |
| 4) मंगल       | 5) शनि         | 6) कल्पविकाल        |
| 7) लोहित      | 8) कनक         | 9) संस्थान          |
| 10) अंतरद     | 11) कचवर       | 12) दुन्दुभि        |
| 13) रत्ननिभि  | 14) रूपनिर्भास | 15) नील             |
| 16) नीलाभास   | 17) अश्व       | 18) अश्वस्थान       |
| 19) कोश       | 20) कंसवर्ण    | 21) कंस             |
| 22) शंखपरिणाम | 23) शंखवर्ण    | 24) उदय             |
| 25) पंचवर्ण   | 26) तिल        | 27) तिलपुष्छ        |
| 28) क्षारसाशी | 29) धूम        | 30) धूमकेतु         |
| 31) एकसंस्थान | 32) अक्ष       | 33) कलेवर           |
| 34) विकट      | 35) अभिन्नसंघि | 36) ग्रंथि          |
| 37) मान       | 38) चतुष्पाद   | 39) विद्युत्‌जिह्वा |
| 40) नम        | 41) सदृश       | 42) निलय            |

- |                 |                |                 |
|-----------------|----------------|-----------------|
| 43) काल         | 44) कालकेतु    | 45) अनय         |
| 46) सिंहायु     | 47) विपुल      | 48) विकाल       |
| 49) महाकाल      | 50) रुद्र      | 51) महारुद्र    |
| 52) संतान       | 53) संभव       | 54) सर्वार्थी   |
| 55) दिशा        | 56) शांति      | 57) तुन         |
| 58) निश्चल      | 59) प्रत्यक्ष  | 60) निर्मन्त्रो |
| 61) ज्योतिष्मान | 62) स्वयंगम    | 63) भासूर       |
| 64) विरज        | 65) निर्दुर्ख  | 66) वित्तशोक    |
| 67) सीमंकर      | 68) क्षेमंकर   | 69) अभयंकर      |
| 70) विजय        | 71) दैज्यन्त   | 72) जयन्त       |
| 73) अपराजित     | 74) विमल       | 75) त्रस्त      |
| 76) विजयाणु     | 77) विकास      | 78) करिक्प्रष्ट |
| 79) एकजटि       | 80) अद्धिज्वाल | 81) जलकेतु      |
| 82) केतु        | 83) क्षीरस     | 84) अघ          |
| 85) श्रवण       | 86) राहु       | 87) महाग्रह     |
| 88) भावग्रह     |                |                 |

इन 88 ग्रहों में से 83 ग्रहों की नगरियाँ बुध एवं शनि के अंतराल में अवस्थित हैं।

जैन धर्म के अनुसार ब्रह्माण्ड शाश्वतिक है। इसका घनफल 343 घन राजु प्रमाण है, इसका आकार कमर में दोनों हाथों को इस तरह लगाते हैं कि दोनों कोहनी एक दुसरे के विपरीत रहे तथा मनुष्य खड़ा रहे, ऐसा आकार विश्व का आकार है तथा वैज्ञानिकों ने भी स्वीकारा है कि विश्व का आकार टॉवरनुमा है।

इस लोक के मध्यभाग में ज्योर्तिलोक है, जो कि एक राजु लंबा एवं एक राजु चौड़े भाग में फैला हुआ है। (एक राजु प्रायः = असंख्यात प्रकाशवर्ष (Light years) जब की प्रकाश एक सेकंड में  $3 \times 10^8$  मीटर प्रति सेकंड से गमन करता है तब) एक सूर्य के परिवार में 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 6697500000000000000 तारागण हैं।

जम्बुद्वीप में दो चंद्रमा एवं दो सूर्य हैं। लवणोदक समुद्र में चार चंद्र एवं चार सूर्य हैं तथा धातकी खण्ड में बारह चंद्र एवं बारह सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में 42 चंद्र एवं 42 सूर्य हैं तथा अर्धपुश्कर द्वीप में 72 चंद्रमा एवं 72 सूर्य हैं। इसी प्रकार अढाई द्वीप में  $(2+4+12+42+72) = 132$  चंद्रमा एवं 132

सूर्य हैं। जम्बुद्वीप में ध्रुवतारा 36 हैं। लवणोदक समुद्र में 139 ध्रुवतारा हैं, घातकी खण्ड में 1010 ध्रुवतारा हैं, कालोदक में 41120 ध्रुवतारा हैं तथा पुष्करार्ध में 35230 ध्रुवतारा हैं। जिस द्वीप समुद्र में जितने जोतिष्क रहते हैं, उनमें से आधे ज्योतिष्क उसी अपने द्वीप एवं समुद्र के एक भाग में संचार करते हैं और आधे उस द्वीप के अन्य भाग में संचार करते हैं।

जम्बुद्वीप में दो चंद्रमा से संबंधित ताराओं का परिणाम 133950 कोड़ा कोड़ी हैं। इस परिणाम में 190 का भाग देने पर 705 कोड़ा कोड़ी लब्ध प्रथम शलाका है। यह प्रथम शलाका भरत क्षेत्र संबन्धी शलाका है अर्थात् भरतक्षेत्र संबन्धी ताराओं की संख्या 705 कोड़ा कोड़ी है। इस भरत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त दूनी-दूनी होती गई है तथा विदेह के आगे के क्षेत्र एवं पर्वतों पर आधी होती गई है। जैसे : ( 1 / 2 / 4 / 8 / 16 / 32 / 64 / 32 / 16 / 8 / 4 / 2 / 1 ) हमारी भावना है कि उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन से लाभान्वित होकर खगोलविद एवं वैज्ञानिक लोग अन्य ग्रहों एवं आकाशीय पिण्डों की खोज करें।

## आचार्य श्री कनकनंदी जी द्वाया रचीत साहित्य

- 1 अनेकान्त सिद्धान्त
- 2 अहिंसामृतम्
- 3 अतिमानवीय शक्ति
- 4 अग्नि परीक्षा
- 5 अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग
- 6 अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग
- 7 अनन्त शक्ति संपन्न परमाणु से लेकर परमात्मा
- 8 आदर्श विचार-विहार-आहर
- 9 आनन्द की खोज
- 10 आध्यात्मिक मनोविज्ञान (इष्टोपदेश)
- 11 उपवास का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण
- 12 क्रान्ति के अग्रदूत
- 13 कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण
- 14 क्रान्ति दृष्टा प्रवचन
- 15 कौन है विश्व का कर्ता ! हर्ता ! धर्ता ?
- 16 करें साक्षात्कार यथार्थ सत्य का
- 17 कर्म सिद्धन्त और उसके वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं

## सामाजिक आयाम(छठी अन्तराष्ट्रीय वै.सं. स्मारिका)

- 18 जीने की कला
- 19 ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान
- 20 जीवन्त धर्म सेवा धर्म
- 21 जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र
- 22 जैन कर्म सिद्धान्त, आध्यात्म एवं विज्ञान -  
डॉ नारायण लाल कछारा
- 23 तत्त्वानुचिन्तन
- 24 दिगम्बर साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच (गुजराती)
- 25 दंसण मूलो धम्मो तहा संसार मूल हेदुं मिच्छतं
- 26 धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान भाग - 1
- 27 धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग - 1
- 28 धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग - 2
- 29 धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग - 3
- 30 धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन
- 31 धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थकर
- 32 ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण
- 33 धर्म दर्शन एवं विज्ञान

- 34 नग्न सत्य का दिग्दर्शन
- 35 नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
- 36 निमित्त उपादान मीमांसा
- 37 निकृष्टतम् स्वार्थी तथा कुरतम् प्राणी मनुष्य
- 38 पुण्य पाप मीमांसा
- 39 पार्श्वनाथ का तपोसर्ग कैवल्यधाम बिजौलिया
- 40 पूजा से मोक्ष, पुण्य तथा पाप भी
- 41 पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
- 42 प्रथम शोध बोध अविष्कारक एवं प्रवक्ता
- 43 प्राचीन भारत की 72 कलाएँ
- 44 बंधु बंधन के मूल
- 45 ब्रह्माण्डीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान
- 46 ब्रह्माण्ड के रहस्य
- 47 भाग्य एवं पुरुषार्थ
- 48 भारतीय आर्य कौन-कहाँ से-कब से, कहाँ के?
- 49 भाव एवं भाग्य तथा अङ्ग विज्ञान (सर्वाङ्ग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा)
- 50 भविष्य फल विज्ञान

- 51 भारत को पुनः विश्व गुरु बनाने के लिए समग्र क्रांति  
चाहिए
- 52 भारत को गारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र
- 53 मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास
- 54 युग निर्माता भ. ऋषभदेव
- 55 ये कैसे धर्मात्मा निर्व्यसनी-राष्ट्रसेवी
- 56 विश्व विज्ञान रहस्य
- 57 विश्व इतिहास
- 58 विश्व धर्मसभा (समवशारण)
- 59 विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)
- 60 व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण  
(सप्तव्यसन)
- 61 विश्व धर्म के दस लक्षण
- 62 विश्व प्रति विश्व एवं श्याम विवर
- 63 व्यक्ति एवं समाज निर्माण के आद्य कर्तव्य
- 64 विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य
- 65 शिक्षा शोधक स्मारिका (तृ.रा.वैज्ञा.सं.)
- 66 शांति क्रांति के विश्व नेता बनाने के उपाय

- 67 संगठन के सूत्र  
68 स्वप्न विज्ञान  
69 समग्र क्रांति के उपाय  
70 स्वतंत्रता के सूत्र (मोक्षशास्त्र)  
71 सत्यसाम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार)  
72 सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)  
73 स्मारिका (प्रथम संगोष्ठी)  
74 स्मारिका (द्वितीय संगोष्ठी)  
75 संस्कृति की विकृति  
76 समवशारण (आचार्य श्री से भेटवार्ता)  
77 संस्कार और हम  
78 हिंसामय यज्ञ का प्रारंभ क्यों (हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोपादि)  
79 क्षमा विरस्य भूषणम्  
80 त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य  
81 श्रमण संघ संहिता  
82 Leshya Psychology  
83 Moral Education

- 84 Nakedness of Dixamber Jain  
Saints Kesh Lonch
- 85 Sculptor of the “Rishabhadev”
- 86 Pholosophy of Scientific Religion
- 87 What kinds of Dharmatma  
(Plonsman) these are
- 88 Jaina Doctrine of Karma  
Dr. N. L. Kachhara

### -: ग्रंथ प्राप्ति स्थान :-

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा - छोटुलाल चित्तौडा, चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर, आयड  
आयड बस स्टॉप के पास, उदयपुर - 313001 (राज.)  
फोन :- 0294 - 2413565

## आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव के संघ के विशेष कार्यक्रम (जून 2005 तक)

1. [w.w.w.jainkanaknandhi.org](http://www.jainkanaknandhi.org) (इंटरनेट वेबसाइट)
2. E-mail - [info@jainkanaknandhi.org](mailto:info@jainkanaknandhi.org)
3. राष्ट्रीय / अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठीयाँ - 6
4. धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन - 26
5. धार्मिक प्रशिक्षण कक्षाएँ - सैकड़ों
6. स्वसंघ-परसंघ के साधुओं के अध्ययन-अध्यापन के कार्यक्रम - सैकड़ों
7. प्रश्नमंच एवं सास्कृतिक कार्यक्रम, भजन, भाषण, सेवा-सैकड़ों
8. बच्चों, युवक-युवतियों को संस्कारवान बनाना एवं उनसे आहार लेना-हजारों
9. हर क्षेत्र में अच्छे व्यक्तियों को एवं संस्थाओं को पुरस्कृत करना-हजारों
10. हर विधा के वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्यों का सृजन एवं प्रकाशन 148 ग्रंथ (छह भाषाओं में अनेक संस्करण)
11. कम्प्युटराइज्ड प्रतियोगिता - 6

12. गरीब, असहाय, रोगी, विपन्न मनुष्य एवं पशु-पक्षियों की सेवा-सहायता करना।

13. व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में समता-सुख-शांति-मित्रता-संगठन आदि की स्थापना के लिए प्रयास

14. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलुम्बर, प्रतापगढ़, मुंबई, अमेरीका)

15. धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर, अमेरीका)

### संस्थान की नियमावली

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशक, द्रव्यदाता को उसे कीताब की दशमांश प्रतियाँ दी जायेगी।

2. ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रंथमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा ग्रंथ माला से प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

3. साधु साध्वी, विशिष्ट विद्वत् जन और विशिष्ट धर्मायितनों को पुस्तकें निःशुल्क दी जायेगी।

4. ग्रंथमाला से संबंधित कार्यकर्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।



मोहनलाल सुखाडिया वि.वि. में आ. "श्री कनकनंदीजी कक्ष" की स्थापना के अवसर पर आ. श्री के व्यवितत्व-कृतिल पर प्रकाश डालते हुए "धर्म दर्शन सेवा संस्थान" के सचिव डॉ. नारायणलाल कच्छारा

विशेष जानकारी के लिए आचार्य कनकनंदी  
जी के निम्नोक्त ग्रंथों का अध्ययन करें  
ग्रंथ प्राप्ति स्थान - धर्म दर्शन सेवा संस्थान  
द्वारा - छोटूलाल चित्तांडा, चंद्रप्रभ दि. मंदिर आयड,  
आयड बस स्टॉप के पास, उदयपुर-313001 (राज.)  
फोन नं.- (0294) 2413565

